अध्याय –3

हिंदी का भाषिक स्वरूप

3.1 हिंदी स्वनिम का वर्गीकरण

मनुष्य में विविध ध्वनियों के उच्चारण की क्षमता होती है। इसका ज्ञान वार्तालाप के समय होता है और विविध गानों के अरोह–अवरोह के संदर्भ से ध्वनि की विविधता का सुस्पष्ट ज्ञान होता है। भाषा विज्ञान में मानव द्वारा प्रयुक्त उन ध्वनियों का ही वर्गीकरण तथा विश्लेषण किया जाता है, जिनका भावाभिव्यक्ति में महत्व होता है।

ध्वनि–भेद – सभी भाषाओं में स्वर तथा व्यंजन दो प्रकार की ध्वनियों होती हैं। ध्वनि सम्बन्धी यह विभाजन अत्यंत पुराना है। आचार्य पतंजलि ने महाभाष्य में स्वर और व्यंजनों के दो वर्गों का उल्लेख किया है – ''स्वयं राजन्ते स्वराः। अन्वग् भवति व्यंजनम् इति।'' (महाभाष्य 1/2/29.30) अर्थात् स्वर ये ध्वनियाँ हैं जो स्वयं उच्चारित हो सकती हैं। व्यंजन वे ध्वनियाँ हैं जो स्वरों की सहायता के बिना उच्चारित नहीं हो सकती।

पतंजलि ने स्वरों की प्रधानता और व्यंजनों की अप्रधानता को भी रेखांकित किया है। इसका मुख्य कारण यह है कि उनके अनुसार व्यंजनों का उच्चारण स्वर के सहयोग के बिना नहीं हो सकता है।

बलाक तथा ट्रेगर ने स्वर और व्यंजन को इस प्रकार परिभाषित किया है – “A vowel is a sound for whose production the oral pass age is unobstructed, so that the air current can flow the lungs to the lips and beyond without beirn stopped.” अर्थात् जिन ध्वनियों के उच्चारण में, मुख में किसी प्रकार का अवरोध न हो, उन्हें स्वर ध्वनि कहते हैं। ऐसे में फेफड़े से आने वाला वायु–प्रवाह ओष्ठ और उसके आगे कहीं भी अवरूद्ध नहीं होता है।

“A consonant, conversely, is a sound for whose production the air current is completely stopped by an occlusion of the larynx or the oral passage.

1. स्वर का उच्चारण अकेले सम्भव है, किन्तु स्, ज्, श् व्यंजन अपवाद हैं।
2. सभी स्वरों का उच्चारण देर तक कर सकते हैं, किन्तु व्यंजन में केवल संघर्षी व्यंजन ऐसे होते हैं।
3. ई तथा ऊ को छोड़कर सभी स्वरों के उच्चारण में आवाज मुख–विवर में गूँजकर सीधे निकलती है, किंतु व्यंजन में अवरोध होता है।
4. प्रायः सभी स्वर व्यंजनों की अपेक्षा अधिक मुखर होते हैं।
5. ऑसिलोग्राफ से लहर संबंधी प्रयोग करने पर ज्ञात होता है कि स्वर–लहरें व्यंजन से भिन्न होती हैं, किंतु र्, म् दोनों के मध्य आने वाली ध्वनियाँ हैं।

स्वर तथा व्यंजन ध्वनियों को सरल और वैज्ञानिक रूप से इस प्रकार परिभाषित कर सकते हैं –

स्वर – वे ध्वनियाँ हैं जिनके उच्चारण के समय निःश्वास की वायु अवरोध रहित अवस्था में अबोध गति से बाहर आती है।

व्यंजन – वे ध्वनियाँ हैं जिनके उच्चारण के समय निःश्वास की वायु कहीं न कहीं बाधित होकर बाहर आती है।

स्वर परिभाषा और वर्गीकरण

जिन ध्वनियों के उच्चारण में अन्य किसी ध्वनि का सहयोग आवश्यक न हो उच्चारण अबोध गति से जितनी देर चाहें कर सकते हैं, उन्हें स्वर ध्वनि कहते हैं; यथा– अ, इ, उ आदि।

	अग्र	मध्य	पश्च
सर्वोच्च	ई		ऊ
उच्च	ठ		ड
निम्नतम उच्च	ए		ओ
उच्चत्तर मध्य	ऐ		औ
निम्नत्तर मध्य		अ	
निम्न		आ	

हिंदी स्वरों को निम्नलिखित आधारों पर वर्गीकृत कर सकते हैं –

1. जीभ का कौन–सा भाग करण का कार्य करता है– फेफड़े से बाहर आने वाली निःश्वास वायु से मुख–विवर के विभिन्न रूपों के कारण विभिन्न ध्वनियों का उच्चारण होता है। स्वर उच्चारण–प्रक्रिया में जीभ का अग्र, मध्य अथवा पश्च भाग उठकर सहायक सिद्ध होता है। इसी आधार पर हिंदी स्वरों को तीन मुख्य वर्गों में विभक्त कर सकते हैं –

   (क) अग्र स्वर – इ, ई, ए, ऐ।

   (ख) मध्य स्वर – अ।

   (ग) पश्च स्वर – उ, ऊ, ओ, औ।

तलु

अग्र मध्य पश्च

अवृत्ताकार वृत्ताकार

संवृत–ई ________________ ऊ–संवृत

अर्ध संवतृत–ए ________________ ओ–अर्ध–संवृत

अर्ध विवृत–ऐ ________________ औ–अर्ध विवृत

विवृत ________________ आ–विवृत

हिन्दी स्वर : वर्गीकरण

2. जीभ का व्यवहृत भाग उठता है– स्वर उच्चारण प्रक्रिया में जीभ के अल्पाधिक रूप से उठने के कारण मुख की खुलने वाली स्थिति के अनुसार स्वरों का विभाजन कर सकते हैं –

   (क) विवृत–जब मुख–विवर पूरा खुला हो, जीभ निश्चेष्ट पड़ी हो; यथा–आ, औ,

(ख) अर्ध–संवतृत – जब मुख–विवर लगभग पूरा खुला हो जीभ एक तिहाई उठी हो; यथा –ऐ, औ।

(ग) अर्ध–संवृत – जब मुख–विवर संकरा हो, जीभ दो तिहाई उठी हो; यथा– ऐ, ओ।

(घ) संवृत – जब मुख–विवर अत्यंत संकरा हो, जीभ बहुत ऊपर उठी हो या सर्वाधिक चंचल हो; यथा– इ, ई, उ, ऊ।

3. ओष्ठों की स्थिति के अनुसार – उच्चारण में ओठों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। उच्चारण हेतु निःश्वास का भीतरी नियंत्रण जीभ के द्वारा होता है, तो उनका बाहरी नियंत्रण ओठों के द्वारा होता है। ओठों की स्थिति के अनुसार स्वरों का विभाजन इस प्रकार कर सकते हैं –

   (क) वृत्ताकार – इसे वृतमुखी स्वर भी कहते हैं। इन स्वरों के उच्चारण में दोनों ओंठ अल्पाधिक रूप में वृत्ताकार खुलते हैं। ऐसे स्वर हैं– उ, ऊ, ओ, औ।

   (ख) अवृत्ताकार – इसे अवृतमुखी भी कहते हैं। इन स्वरों के उच्चारण में दोनों ओंठ खुलकर वृत्ताकार रूप नहीं धारण करते हैं वरन् सामान्य रहते हैं। ऐसे स्वर हैं – इ, ई, ए, ऐ।

   (ग) उदासी – जिन स्वरों के उच्चारण में दोनों ओंठ खुलकर लगभग उदासी रहते हैं; यथा – अ।

4. मात्रा के अनुसार – उच्चारण में लगने वाले समय को मात्रा कहते हैं। मात्रा के आधार पर स्वरों का स्वरूप निर्धारित किया जाता है। संस्कृत में ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत तीन प्रकार के स्वर मिलते हैं। हिंदी में इनकी संख्या मुख्यतः तीन हैं– ह्रस्व–अ, इ, उ; दीर्घ–आ, ई, ऊ और प्लुत–ओ (ओउम)।

5. कोमल तालु और अलिजिह्वा की स्थिति के अनुसार– ये दोनों अंग कभी नासिक–विवर के मार्ग को पूरी तरह बन्द कर देते हैं, जिससे हवा केवल मुख मार्ग से निकलती है। ऐसे में उच्चारित होने वाला स्वर मौखिक होता है। ये अंग कभी मध्य स्थिति में रहते हैं, जिससे वायु मुख तथा नासिका दोनों ही मार्गों से निकलती है। ऐसी ध्वनि को अनुनासिक ध्वनि कहते हैं। इस तरह स्वरों के दो वर्ग बना सकते हैं।

   (क) मौखिक – अ, आ, ए आदि सभी स्वर।

   (ख) अनुनासिक – आँ, एँ।

   अनुनासिक स्वर ध्वनियाँ भी दो प्रकार की होती हैं –

   पूर्ण अनुनासिक – पूर्ण अनुनासिकता को अनुनासिक चिह्न द्वारा लिपिबद्ध किया जाता है; यथा – हाँ > आँ एँ।

   अपूर्ण अनुनासिक – स्वरों की अपूर्ण अनुनासिक नासिक्य व्यंजनों के आधार पर होती है। नासिक्य व्यंजन के पूर्व का स्वर उच्चारण में आंशिक अनुनासिक हो जाता है। लेखन में अपूर्ण अनुनासिक चिह्न नहीं लगाया जाता है; यथा– राम > राँम् > र् आँ म्।

6. स्वर–तंत्रियों की स्थिति के आधार पर – विभिन्न स्वरों के उच्चारण में स्वर–तंत्रियाँ भिन्न–भिन्न स्थिति धारण करती हैं। इस आधार पर भी स्वरों को वर्गीकृत कर सकते हैं। हिंदी के सभी स्वर मूलतः घोष है। विशेष प्रयोग–स्थिति में और कुछ अन्य भाषाओं में अघोष स्वर मिलते हैं।

   (क) घोष – जिन स्वरों के उच्चारण में स्वर–तंत्रियों के निकट आने के कारण वायु घर्षण के साथ बाहर आती है, उन्हें घोष कहते हैं। प्रायः सभी स्वर घोष होते हैं।

   (ख) अघोष – जिनके उच्चारण के समय स्वर–तंत्रियों के एक–दूसरे से दूर होने के कारण वायु बिना घर्षण

के, सरलता से बाहर आती है, उन्हें अघोष स्वर कहते हैं; यथा – विभिन्न बोलियों में प्रयुक्त इ, उ, ए विशिष्ट ध्वनियाँ।

(ग) जपित – जब बीमार या कमजोर व्यक्ति फुसफस करता है, तो वायु स्वर–तंत्रियों से साधारण संघर्ष करती हुई बाहर आती है। इस प्रकार से उच्चरित स्वर ध्वनियाँ जपित होती हैं।

7. मुख की मांसपेशियों की दृढ़ता के आधार पर – विभिन्न स्वरों के उच्चारण में कभी तो मुख की मांसपेशियाँ दृढ़ हो जाती हैं, तो कभी शिथिल हो जाती हैं। कुछ ध्वनियों के उच्चारण–समय मांसपेशियों में हल्की दृढ़ता होती है। इस आधार पर स्वरों के शिथिल, दृढ़ और मध्यम तीन वर्ग बनाए जा सकते हैं –

(क) शिथिल – अ, इ, उ।

(ख) दृढ़ – औं, ऑ।

(ग) मध्यम – ए, ओ।

8. संयुक्त के आधार पर – स्वरों के एक स्थान और एक से अधिक स्थानों के उच्चारण को ध्यान में रखकर उन्हें दो वर्गों में विभक्त कर सकते हैं।

(क) मूल स्वर – जिनके उच्चारण में जीभ एक स्थान पर रहती है, यथा – अ, आ, इ, ई इत्यादि।

(ख) संयुक्त स्वर – जिनके उच्चारण में जीभ एक स्वर उच्चारण स्थान से दूसरे उच्चारण स्थान पर पहुँच जाती है, तो संयुक्त स्वर होते हैं; यथा – ए > अइ, ओ > अउ, ऐ > अए, औ > अओ आदि।

3.1.2 व्यंजन : परिभाषा और वर्गीकरण

व्यंजन वे ध्वनियाँ हैं जिनके उच्चारण में स्वर ध्वनि का सहयोग अनिवार्य हो, निःश्वास की वायु मुख–विवर से, अबोध गति से, निकल नहीं पाती है वरन् बाधित होने के कारण घर्षण करती हुई बाहर आती है। व्यंजनों का वर्गीकरण निम्नलिखित आधारों पर करते हैं –

स्थान / प्रयत्न	स्वर यंत्र मुख	कंठ्य	तालव्य	मूर्द्धन्य	दन्त्य	वत्र्स्य	दन्तोष्ठ	द्वयोष्ठ्य
स्पर्श		क् ख् ग् घ्		ट् ठ् ड् ढ्	त् थ् द् ध्			प् फ् ब् भ्
स्पर्श			च् छ्					
संघर्षो			ज् झ्					
नासिक्य		ङ्	ञ्	ण्	न्	न्		म्
पार्श्विक				ळ्		ल्		
प्रकंपी					र्			
उत्क्षिप्त				ड़् ढ़्				
संघर्षी	ह्	ख़् ग़्	श्		स्	स् ज़्	व् फ्	
अर्धस्वर			य्					व्

(क) प्रयत्न के आधार पर – इस आधार पर व्यंजनों को निम्नलिखित वर्गों में विभक्त कर सकते हैं –

1. स्पर्श – जनके उच्चारण–समय में मुख दो भिन्न अंग–दोनों ओष्ठ, नीचे का ओष्ठ और ऊपर के दांत, जीभ की नोक और दाँत आदि एक–दूसरे से स्पर्श की स्थिति में हों, वायु उनको स्पर्श करती हुई बाहर आती हो, तो उन्हें व्यंजन कहेंगे; यथा– क्, ट्, त् तथा प् वर्गों की प्रथम चार ध्वनियाँ।
2. संघर्षी – जिनके उच्चारण में मुख के दो अवयव एक–दूसरे के निकट आ जाते हैं और वायु निकलने का मार्ग संकरा हो जाता है, तो वायु घर्षण करके निकलती है, उन्हें संघर्षी व्यंजन कहते हैं; यथा– ख़्, ग़्, ज़्, फ़्, श्, ष्, स् आदि।
3. स्पर्श संघर्षी – जिन व्यंजनों के उच्चारण में पहले स्पर्श फिर घर्षण की स्थिति हो; यथा– च्, छ्, ज्, झ्।
4. नासिक्य – जिन व्यंजनों के उच्चारण में दांत, ओष्ठ, जीभ आदि के स्पर्श के साथ वायु नासिक मार्ग से बाहर आती है, उन्हें नासिक्य ध्वनि कहते हैं; यथा– पाँचों वर्गों की पाँचवीं (ङ्, × ण्, न् म्) ध्वनियाँ।
5. पार्श्विक – जिन व्यंजनों के उच्चारण में मुख के मध्य दो अंगों के मिलने से वायु–मार्ग अवरूद्ध होने के बाद जीभ के एक या दोनों ओर से वायु बाहर आती है; उन्हें पार्श्विक कहते हैं; यथा– ल्।
6. लुण्ठित – जिनके उच्चारण में जीभ बेलन की भांति लपेट खाती है; यथा– र्। 'र्' ध्वनि यदा–कदा प्रकम्पित रूप में भी प्रयुक्त होती है।
7. उत्क्षिप्त – जिनके उच्चारण में जीभ की नोक झटके से तालु को छूकर वापस आ जाती है; उन्हें उत्क्षिप्त व्यंजन कहते हैं; यथा – ड़, ढ़।
8. अर्ध–स्वर – जिन ध्वनियों की उच्चारण प्रकृति स्वर और व्यंजन के मध्य होती है, उन्हें अर्ध–स्वर कहते हैं। इनका उच्चारण स्वर के समान ही शुरू होता है, किन्तु व्यंजन के निकट होता है। स्वरों के समान इनकी मात्रा भी नहीं होती है, इसलिए इन्हें व्यंजनों में रखते हैं; यथा– य्, व्।

(ख) स्थान के आधार पर – इस आधार से व्यंजनों को निम्नलिखित वर्गों में विभक्त कर सकते हैं –

1. स्वर यंत्रमुखी – जिन व्यंजनों का उच्चारण स्वर–यन्त्रमुख से हो; यथा– ह्, अंग्रेजी का एच (H) है।
2. जिह्वमूलीय – जिनका उच्चारण जीभ के मूल भाग से होता है; यथा– क़्, ख़्, ग़्।
3. कण्ठ्य – जिन व्यंजनों का उच्चारण कण्ठ से होता है, उन्हें कण्ठ्य कहते हैं। इनके उच्चारण में जीभ का पश्च भाग कोमल तालु को स्पर्श करता है; जैसे –कवर्ग (क्, ख्, ग्, घ्, ङ्)।
4. तालव्य – जिनका उच्चारण जीभ की नोक या अग्रभाग के द्वारा कठोर तालु के स्पर्श से होता है, जैसे– च्, छ्, ज्, × श्।
5. मूर्द्धन्य – जिन व्यंजनों का उच्चारण मूर्धा से होता है। इस प्रक्रिया में जीभ मूर्धा का स्पर्श करती है; जैसे–ट्, ठ्, ड्, ढ्, ण्, ष्।
6. वत्सर्य – जिन ध्वनियों का उद्भव जीभ के द्वारा वर्त्स या ऊपर मसूढ़े के स्पर्श से हो; यथा– न्, ल्, र्।
7. दन्त्य – जिन व्यंजनों का उच्चारण दाँत की सहायता से होता है। इसमें जीभ की नोक ऊपर दाँत–पंक्ति का स्पर्श करती है; यथा– त्, थ्, द्, ध्, न्, ल्, स्।
8. ओष्ठ्य – दोनों ओष्ठों के मिलने से उच्चारित होने वाली ध्वनि को ओष्ठ्य व्यंजन कहते हैं; यथा –प्, ़फ्, ब्, भ्, म्।

(ग) स्वर–तन्त्रियों के आधार पर – इस आधार पर व्यंजनों के दो वर्ग बना सकते हैं –

1. घोष – जिन ध्वनियों के उच्चारण–समय में स्वर–तंत्रियाँ एक–दूसरे के निकट होती हैं और निःश्वास वायु निकलने से उसमें कम्पन हो। प्रत्येक वर्ग की अन्तिम तीन (तीसरी, चौथी, पाँचवीं) ध्वनियाँ; यथा – ग्, घ्, ङ्, ज्, झ्, ञ् आदि।

2. अघोष – जिनके उच्चारण समय स्वर–तंत्रियों में कम्पन न हो। प्रत्येक वर्ग की प्रथम दो (पहली, दूसरी) ध्वनियाँ; यथा– क्, ख्, च्, छ् आदि।

(घ) प्राणत्व के आधार पर – प्राण का अर्थ है– वायु। इस आधार पर व्यंजन के दो वर्ग बना सकते हैं –

1. अल्पप्राण – जिनके उच्चारण में सीमित वायु निकलती है, उन्हें अल्पप्राण व्यंजन कहते हैं। ऐसी ध्वनियाँ 'ह' रहित होती हैं। प्रत्येक वर्ग की प्रथम, तृतीय और पंचम व्यंजन ध्वनियाँ; यथा – क्, ग्, ङ्, ज्, च्, ञ् आदि।

2. महाप्राण – जिनके उच्चारण में अपेक्षाकृत अधिक वायु निकलती है। ऐसी ध्वनि ह्–युक्त होती है; जैसे – ख = कह् (kh), घ = (Gh) आदि।

(ङ) अनुनासिकता के आधार पर – मुख और नासिका मार्ग से निकलने वाली निःश्वास वायु के आधार पर व्यंजनों को दो वर्गों में विभक्त कर सकते हैं –

1. मौखिक – जिसक उच्चारण में वायु मुख–मार्ग से निकलती है; यथा – क्, च्, ट्, त् आदि।

2. नासिक्य – जिसमें निःश्वास वायु मुख्यतः नासिका मार्ग से बाहर आती है; यथा– ङ्, ञ्, ण्, न्, म्।

(च) संयुक्तता के आधार पर – इस आधार पर व्यंजनों के तीन वर्ग बना सकते हैं –

1. असंयुक्त – इन्हें मूल व्यंजन भी कहते हैं। जो व्यंजन अकेले स्वतंत्र रूप में प्रयुक्त हों; यथा – क्, ख्, च्, त् आदि।

2. संयुक्त – जब दो भिन्न व्यंजन ध्वनियाँ एक साथ प्रयुक्त हों। इनमें एक अर्ध और दूसरी पूर्ण ध्वनि होती है; यथा– क्त (रक्त), प्य (प्यारा), न्त (अन्त) आदि।

3. द्वित्व – जब किसी एक व्यंजन का एक अर्थ तथा दूसरा पूर्ण रूप एक साथ प्रयुक्त होता है; यथा – त्त (पत्ता), प्प (गप्प), क्क (पक्का) आदि।

(छ) मांसपेशियों की दृढ़ता के आधार पर– विभिन्न व्यंजनों के उच्चारण में मुख की मांसपेशियों की स्थिति में भिन्नता होती है। इस आधार पर व्यंजनों के तीन वर्ग बना सकते हैं–

1. दृढ़ – जिनके उच्चारण में मुख की मांसपेशियाँ दृढ़ हो जाती हैं; यथा – ड्, ढ्, स्, ट्

2. मध्यम – जिनमें मुख की मांसपेशियाँ न तो विशेष दृढ़ होती हैं, न ही विशेष शिथिल होती हैं; यथा – च्, श्।

3. शिथल – जिनके उच्चारण में मुख की मांसपेशियाँ शिथिल होती हैं; यथा– प्, क्।

3.3 हिन्दी शब्द–संरचना

शब्द भंडार के सम्बन्ध में किया गया विवेचन अपना अभिप्राय बोध कराने में अधूरा ही रहता जब तक शब्दों की संरचनात्मक प्रक्रिया को इसके साथ अध्ययन न कर लिया जाये। शब्दों की विपुल मात्रा में विनिर्मित ही शब्द–संपदा

अथवा शब्द–भंडार की अभिवृद्धि करेगी। वस्तु शब्द भण्डार के सम्पूर्ण अर्थबोध के लिए शब्दों की संरचनात्मक प्रक्रिया पर सापेक्षिक दृष्टि से विवेचन किया जाता है।

'शब्द' एक धातु है जिसका अर्थ है शब्द करना अर्थात् बोलना। इस प्रकार जिससे बोलने का अर्थ ज्ञान हो, वही शब्द है। वंशानुक्रम की दृष्टि से पद से छोटी इकाई शब्द है। विशुद्ध रूप से शब्द–व्युत्पत्ति को ही शब्द–रचना कहा जायेगा। इस प्रकार शब्द–रचना की परिधि में यौगिक शब्द ही आते हैं, न कि रूढ़ शब्द। शब्द–रचना से यही प्रतिभाषित होता है कि प्रचलित शब्द भाषा के अन्य प्रचलित शब्द से किस प्रकार बना हुआ है। शब्द संरचना के संबंध में कामता प्रसाद गुरु कहते हैं –

''एक ही भाषा के किसी शब्द से जो दूसरे शब्द बनते हैं वे बहुधा तीन प्रकार से बनाये जाते हैं। किसी–किसी शब्द के पूर्व एक–दो अक्षर लगाने के लिए शब्द बनाये जाते हैं और किसी–किसी शब्द के पश्चात् एक–दो अक्षर लगाकर नये शब्द बनाये जाते हैं और किसी–किसी शब्द के साथ दूसरा शब्द मिलने से नये संयुक्त शब्द तैयार होते हैं।'' साधारणतया इसे उपसर्ग, प्रत्यय समास जैसा नाम दिया जाता है।

उपसर्ग

उपसर्ग उस भाषिक इकाई को कहते हैं जिसका भाषा विशेष में स्वतंत्र प्रयोग न होता हो किन्तु जिसे विभिन्न प्रकार के शब्दों के आरम्भ में जोड़कर शब्द–रचना की जाती हो। जैसे सुनिश्चित। यहाँ 'सु' उपसर्ग है। हिंदी में आए हुए उपसर्गों में तत्सम्, तद्भव तथा इतर भाषीय हैं। इनका विवेचन निम्न है –

तत्सम

हिन्दी में बहुत से संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग होता है। उन शब्दों में संस्कृत के उपसर्ग व्यवहृत होते हैं। इस दृष्टि से संस्कृत स्त्रोत से आय उपसर्गों का विवरण निम्न है –

प्र	–	(अधिक) प्रयत्न, प्रख्यात, प्रबल, प्रक्रिया, प्रगति।
परा	–	(पीछे, उल्टा) परभाव, पराक्रम, पराजय।
अप	–	(दूर या बुरा) अपमान, अपकर्ष, अपरूप, अपकृति।
सम्	–	(साथ, पूर्णता) सम्मान, संपूर्ण, सम्मोहन, संविधान।
अनु	–	(अनुसारता अथवा साथ) अनुगमन, अनुरूप, अनुगत, अनुमान।
अव	–	(विरोध एवं विकृति) अवचेतन, अवशेष, अवगुण, अवरूद्ध।
निस्	–	(बिना, बाहर) निस्तार, निष्कासन, निस्सन्देह।
निर्	–	(बाहर) निर्जन, निरपराध, निर्दोष, निर्गम।
दुस्	–	(कठिन) दुस्सह, दुष्काल।
दुर्	–	(बुरा) दुर्गंध, उदुर्गुण, दुर्गम, दुर्लभ।
अति	–	(अधिक, उल्लंघन) अतिरिक्त, अत्याधिक, अत्यंत।
अधि	–	(विशिष्टता, अधिकता) अधिनियम, अधिभास, अधिभौतिक।
अभि	–	(विशिष्टता, उन्मुखता) अभिमत, अभ्यंतर, अभीष्ट।
अपि	–	(निकट) अपिधान, अपिकर्ण।

उप् – (नैकट्य सहकार्य, लघुता) उपनगर, उपमंत्री, उपनाम, उपजाति।

प्रति – (ओर, उल्टा) प्रतिकार, प्रतिगमन, प्रतिष्ठा।

वि – (अभाव एवं विशिष्टता) विक्रम, विज्ञान, विनाश।

नि – (नीचे) निक्षेप, निपात।

सु – (श्रेष्ठता) सुगंध, सुकर्ण, सुगम।

परि – (परिधि, पूर्णता) परिजन, परिवर्तन, परितोष।

कुछ अव्यय और विशेषण भी उपसर्गों की भांति व्यवहार में लाये जाते हैं –

अन्नत – अन्तर्धान, अन्तर्हित।

अलं – अलंकार।

आवि – आविर्भाव।

तिर – तिरोहित, तिरोधान।

कु – कुसंग।

किं – किंचित।

चिर – चिरायु।

तद् – तदकार।

पुनः – पुनर्विवाह, पुनर्मिलन।

तद्भव

ये उपसर्ग हिंदी के तद्गीव शब्दों के साथ प्रयुक्त होते हैं। वस्तुतः ये उपसर्ग संस्कृत से आकर हिंदी के अपने हो गये हैं। इनका विवेचन निम्न है –

अन् – (नहीं) अनभल, अनबन, अनजान।

कु – (विकृति) कुचाल, कुसाज।

उन् – (एक कम या एक नहीं) उजड्ड, उचक्का, उन्नीस, उनतीस।

अध – (आधा) अधपका, अधेसरा।

औ – (हीनता) औघट, औगुन।

क – (हीनता) कपूत।

दु – (बुराई) दुबला, दुकाल।

नि – (अभावधोतक) निहत्था, निडर।

भर – (पूर्णत्वबोधक) भरकस, भरपेट।

सवा – (चौथाई अधिक) सवा पाँ, सवा सात।

इतरभाषीय उपसर्ग

ये उपसर्ग अरबी–फारसी तथा अंग्रेजी से आये हुए हैं। इनमें अरबी–फारसी उपसर्गों की संख्या अधिक है।

अरबी–फारसी

कम	–	(हीनत्वबोधक) कमजोर, कम उम्र।
ना	–	(अभाव तथा निषेध) नापसंद, नामंजूर
फी	–	(प्रत्येक) फी आदमी।
बद	–	(विकृति) बदनाम, बदचलन।
बे	–	(अभाव) बेइमान।
ला	–	(अभाव) लावारिश, लापरवाह।
गैर	–	(नकारात्मक) गैरवाजिब।
दर	–	(में) दर किनार, दर असल।
ब	–	(से) बदस्तूर, बखूबी।

अंग्रेजी

डिप्टी	–	(उप) डिप्टी कलेक्टर, डिप्टी कमिश्नर।
वाइस	–	(उप) वाइस चांसलर।
सब	–	(उप) सबडिवीजन।
हाफ	–	(आधा) हॉफ पैण्ट, हाफ शर्ट।
हेड	–	(प्रधान) हेड मास्टर, हेड क्लर्क।

प्रत्यय

शब्दों के पश्चात् जो अक्षर व अक्षर–समूह लगाया जाता है उसे प्रत्यय कहते हैं। भाषिक व्यवस्था में प्रत्यय का महत्त्व निर्विवाद है प्रत्ययों के सहयोग से हो आशय तथा अर्थ, अनेकानेक शब्दों के रूप में प्रकट हो भाषा को समर्थ बनाते हैं।

प्रत्यय के कई भेद किये जाते हैं। कुछ लोग प्रत्यय को देशी और विदेशी भेदों में बाँटते हैं और कुछ लोग संस्कृत की परिपाटी को मानते हुए प्रत्यय को कृत तथा तद्धित के रूप में विभाजन करते हैं। किन्तु स्वीकृत परिपाटी का समग्रतः अनुपालन हिंदी प्रत्यय परंपरा में कुछ व्यावहारिक नहीं लगता है, क्योंकि ऐसे भी प्रत्यय हैं जो कृत और तद्धित दोनों ही रूपों में प्रयुक्त होते हैं। जैसे–आई। प्रस्तुत प्रत्यय से पढ़ाई (कृत) तथा चतुराई (तद्धि) दोनों ही बनते हैं। क्योंकि पढ़ना धातु है और चतुर शब्द है।

हिंदी भाषाविदों ने प्रयोग के अर्थ को दृष्टि में रखकर प्रत्यय के निम्न भेद किए हैं – (1) संज्ञा विधायक, (2) विशेषण विधायक, (3) क्रिया विधायक, (4) क्रिया विशेषण विधायक, (5) स्त्री प्रत्यय आदि। हिन्दी प्रत्ययों को निम्नतः विवेचित किया जा सकता है –

संज्ञा विधायक प्रत्यय

इन प्रत्ययों में देशी–विदेशी दोनों का समावेश है क्योंकि हिंदी भाषा में उपसर्गों की भाँति अरबी–फारसी के प्रत्यय भी प्रविष्ट हो चुके हैं। संज्ञा विधायक प्रत्यय के कुछ उदाहरण निम्न हैं –

देशी	प्रत्यय	शब्द
	–अ क	पाठक
	–अ त	खपत
	–अ ट	जीवन
	–अ न	चलन, सड़न
	–अन् त	रटन्त, गढ़न्त
	–आ न	थकान
	–आ ई	लड़ाई
	–आ र	लोहार, चमार, कुम्हार
	–आ रा	निपटारा
	–आरी	भिखारी
	–आ स	मिठास
	–आ व	छलाव, छिड़काव, बचाव
	–आ वा	पछतावा
	–आ व न	बिछावन
	–आ व ट	लिखावट
	–आ ह ट	गरमाहट
	–ई	बोली, हँसी
	–ऐ त	लठैत
	–औ ता	समझौता
	–प न	लड़कपन, बाल्पन
	–त ा	सुन्दरता
	–त् व	वीरत्व
	–नी	करनी
	–वा न	हाथीवान
	–वा रा	बंटवारा
	–शा ला	धर्मशाला इत्यादि

विदेशी	प्रत्यय	शब्द
	–इ श	आजमाइश
	–इ य त	इन्सानियत
	–का र	पेशकार
	–खा ना	छापाखाना
	–गी र	राजगीर, रहगीर
	–दा न	पायदान
	–दा नी	मच्छरदानी
	–नी व स	अर्जीनवीस
	–बन्द	बिस्तरबन्द
	–वा र	माहवार

विशेषण विधायक प्रत्यय

विशेषण विधायक प्रत्यय उन्हें कहते हैं जहाँ प्रत्ययों के संयोग से विशेषण शब्दों की निर्मिति हो। यथा –

–अक्कड़	पियक्कड़, घुमक्कड़
–ओड़	हँसोड़
–इयल	सडियल
–आउ	बिकाऊ
–ए क	तीनेक
–इ या	दुखिया
–उ आ	भडुआ
–ऐ ल	रखैल
–औ टा	कजरौटा
–थ ा	चौथा
– ला	पिछला इत्यादि

क्रिया विधायक प्रत्यय

इन प्रत्ययों के योग से क्रिया पदों की रचना होती है। यथा –

–अ	=	तैरा, जगा, घुमा
–वा	=	पड़ता, पिलवा आदि।

इसी प्रकार –आड़ी, ए, ब प्रत्यय के योग से क्रिया विशेषण विधायक प्रत्यय की निर्मित होती है, यथा – अगाड़ी, पीछे, अब, तक इत्यादि।

स्त्री प्रत्यय

प्रयोगार्थ की दृष्टि से किये गये प्रत्यय विभाजन के अंतर्गत स्त्री प्रत्यय को भी समाहित किया जाता है। पुल्लिंग से स्त्रीलिंग बनाने वाले प्रत्ययों को स्त्री प्रत्यय कहते हैं। संस्कृत के टाप (आ) डीप (ई) प्रत्ययों का प्रयोग हिंदी में भी होता है। हिंदी में प्रयुक्त होने वाले स्त्री प्रत्यय अन्, इन्, नी, इया, आइन हैं। कुछ नमूने द्रष्टव्य हैं –

–आ	=	बाला, प्रियतमा
–ई	=	नर्तकी, हिरणी
–अ न	=	दुल्हन
–इ न	=	नाइन, चमारिन
–नी	=	मोरनी, उँटनी
–इ या	=	बिटिया, चुहिया
–आ नी	=	देवरानी, जेठानी
–आइन	=	सुहआइन, ठकुराइन

3.4 समस्त पद

समस्त पद व्याकरिणक योग्यता प्राप्त भाषा की ऐसी इकाई है जो पद से बड़ी और पदबन्ध से छोटी होती है। जब दो या दो से अधिक शब्द मिलकर एक सामाजिक शब्द की रचना करते हैं, तो उसे समस्त पद कहते हैं। समस्त पद के दोनों शब्दों में कुछ संबंध होने आवश्यक हैं। समस्त पद के पूर्वांश को पूर्व पद और बाद के दूसरे अंश या शब्द को उत्तर पद कहते हैं; यथा– राजा का पुत्र > राजपुत्र। 'राहा' और 'पुत्र' दो शब्दों के योग से बना समस्त पद 'राजपुत्र' एक स्वतंत्र शब्द है।

समस्त पद से पदबन्ध में प्रमुख भेद यह है कि वह वाक्य का एक भाग है और उसमें एकाधिक पद का साथ मिलकर एक पद के रूप में प्रयुक्त होते हैं, जबकि समस्त पद में दो शब्दों से एक स्वतंत्र शब्द–रचना होती है यथा– 'राम वन गए' में 'राम' एक पद है। इसके साथ एकाधिक पद जोड़ कर पदबन्ध बना सकते हैं– 'दशरथ के पुत्र राम' या 'महाप्रतापी राजा दशरथ के पुत्र राम'।

हिंदी की समस्त पद प्रक्रिया संस्कृत भाषा से आई है। संस्कृत भाषा सामाजिक शैली के लिए प्रसिद्ध है। इसे भाषा की संश्लिष्ट प्रवृत्ति कहते हैं। वैसे हिंदी वियोगात्मक या विसंश्लिष्ट भाषा है, किन्तु प्रयत्नलाघव संबंधी व्यावहारिक दृष्टि से समस्त पद का पर्याय रूप में प्रयोग होता है। सभी भाषाओं में समस्त पद की रचना हो सकती है, किंतु प्रत्येक भाषा के समस्त पदों की संरचना भिन्न होगी। समस्त पद के खण्डों के आपसी संबंध को स्पष्ट करने के लिए उनको पृथक् करते हैं। इस प्रक्रिया को 'विग्रह' कहते हैं; यथा–

समस्त पद	विग्रह
घुड़दौड़	घोड़ों की दौड़
फुलवारी	फूलों की बाड़ी

वर्गीकरण

समस्त पद के अर्थ अभिव्यक्ति में उनके दोनों अंशों–पूर्व पद तथा उत्तरपद की विशेष भूमिका होती है। समस्त पद में भी कभी पूर्वपद प्रधान होता है, कभी उत्तरपद। कभी दोनों पद समान रूप से प्रधान होते हैं, तो कभी दोनों से भिन्न कोई अन्य पद प्रधान होता है। इस आधार पर समस्त पद रचना–प्रक्रिया को मुख्यतः चार भागों में विभक्त करते हैं –

1. अव्ययीभाव– जब समस्त पद का पूर्वपद अव्यय हो तो इस पद की प्रधानता होती है। ऐसे में पूर्ण समस्त पद अव्यय के रूप में प्रयुक्त होता है; यथा –

   प्रतिदिन (दिन–दिन) यथाशक्ति (शक्ति के अनुसार)

   आजन्म (जन्म से लेकर)

   अव्ययीभाव समस्त पद का प्रयोग क्रिया–विशेषण के रूप में होता है।

   वह विद्यालय प्रतिदिन जाएगा।

   आपका कार्य यथाशक्ति करूंगा।

2. तत्पुरूष – जिस समस्त पद में अर्थ की दृष्टि से प्रथम पद गौण और उत्तरपद प्रधान हो उसे तत्पुरूष समस्त पद कहते हैं। ऐसे समस्त पद की संरचना में दोनों शब्दों के मध्य से परसंर्गों का लोप हो जाता है। तत्पुरूष समस्त पद संरचना के चार भेद हैं –

(क) लुप्त पद तत्पुरुष – जब दो शब्दों के मध्य के शब्द लुप्त हो जाते हैं, यथा –

पनचक्की – पानी से चलने वाली चक्की

रेलगाड़ी – रेल पर चलने वाली गाड़ी

(ख) नञ् तत्पुरुष– जब अभाव या निषेध अर्थ प्रकट करने के लिए पूर्व रूप में 'अ' या 'अन' का प्रयोग करते हैं; यथा –

अस्थिर – अ स्थिर

अनश्वर – अ नश्वर

अनावश्यक – अन आवश्यक

(ग) कर्मधारय – इस समस्त पद का उत्तर पद प्रधान होता है। पूर्व पद विशेषण तथा उत्तरपद विशेष्य है; यथा–

लाल टोपी – लाल है जो टोपी

नीलकमल – नीला है जो कमल

(घ) द्विगु – इस समस्त पद का पूर्व पद संख्यावाचक होता है। विशेषण–विशेष भाव के साथ समस्त पद समूहवाची भी होता है।

नौरत्न – नौ रत्नों का समाहर (समूह)

चौराहा – चार राहों का समूह

अठन्नी – आठ आनों का समूह

3. द्वन्द्व –जब दो समान यपी प्रधान पदों के योग से समस्त पद की रचना हो, तो द्वन्द्व समस्त पद होगा। पूर्व तथा उत्तर पदों के मध्य से समुच्चय बोधक अव्यय का लोप कर दिया जाता है; यथा –

माता–पिता – माता और पिता

नर–नारी – नर और नारी

4. बहुबीहि – जिस समस्त पद की रचना में पूर्व और उत्तर दोनों पद गौण हों, साथ ही कोई अन्य पद प्रधान हो, तो बहुब्रीहि समस्त पद संरचना होगी; यथा–

नीलकंठ – नीला है कंठ जिसका (शिव)

दशानन – दस हैं आनन जिसके (रावण)

हिंदी भाषा में समस्त पद की रचना मुख्यतः प्रयत्नलाघव की देन है। समस्त पद के पूर्व तथा उत्तर पद प्रायः एक भाषा–स्रोत के शब्दों पर आधारित होते हैं, किन्तु यदा–कदा भिन्न स्त्रोत से भी ऐसी रचना हो जाती है; यथा–रेलगाड़ी, डाकघर।

हिंदी में समस्त पद के दोनों (पूर्व और उत्तर) पदों का एक शिरोरेख से लिखते हैं। दोनों पदों की प्रधानता पर बीच में योजब (–) चिह्न का प्रयोग करते हैं।

3.5 हिन्दी की व्याकरणिक कोटियाँ

भाषा की सहज तथा लघुतम इकाई वाक्य है। वाक्य में व्याकरणिक योग्यता प्राप्त एक या एक से अधिक पद होते हैं। लेखन तथा उच्चारण मं शुद्धता–यथार्थता लाने के लिए पदों को व्याकरण के कई अनुशासनों पर चलना पड़ता है। व्याकरण के इस अनुशासनात्मक आधार को व्याकरणिक कोटियाँ कहते हैं। ये व्याकरणि कोटियाँ भाषानुसार अपने–अपने ढंग की होती हैं। प्रत्येक वाक्य में पद–विभाग की कई कोटियाँ सम्मिलित होती हैं। इनके पारस्परिक संबंधों को स्पष्ट करने के लिए ही व्याकरणिक कोटियों का अध्ययन करते हैं। इससे भावाभिव्यक्ति की स्पष्टता, सशक्ता के साथ निश्चयात्मक रूप सामने आता है। 'व्याकरणिक कोटियाँ' के कुछ उल्लेखनीय तथ्य इस प्रकार हैं–

1. प्रत्येक भाषा की व्याकरणिक कोटियों में भिन्नता होती है।
2. सभी भाषाओं की व्याकरणिक कोटियाँ काल सापेक्ष होती हैं।
3. भाषा की रचना प्रक्रिया के अनुसार व्याकरणिक कोटियों का निर्धारण किया जाता है; यथा–अंग्रेजी में चार लिंगों, संस्कृत में तीन लिंगों और हिंदी में दो लिंगों की प्रक्रिया के अनुसार उनकी लिंग संबंधी व्याकरणिक कोटि निर्धारित की गई है। व्याकरणिक कोटियों के आधार पर भाषा का विश्लेषण किया जाता है।

हिंदी की व्याकरणिक कोटियों में लिंग, वचन, पुरूष, काल, वृत्ति, पक्ष और वाक्य आदि प्रमुख हैं–

1. **लिंग (Gender)** : लिंग का शाब्दिक अर्थ है– चिह्न अर्थात् वह माध्यम जिससे किसी की पहचान की जा सके। लिंग के दो भेद हैं– 1. प्राकृतिक, 2. व्याकरणिक।

प्राकृतिक लिंग निर्धारण में कोमलता, लज्जाशीलता और शान्तिप्रियता को देखकर सम्बन्धित प्राणी को स्त्रीलिंग कहा गया है। इसके विपरीत कठोर, पौरूषेय तथा शक्तिशाली गुणों से सम्पन्न देखकर उसे पुल्लिंग वर्ग में व्यवस्थित किया गया है।

सभी भाषाओं में लिंग–निर्धारण प्रक्रिया और उनकी संख्या अलग–अलग हो सकती है। एक ही व्यक्ति या

वस्तु के लिए प्रयुक्त विभिन्न नामों के लिंगों में भिन्नता हो सकती है; यथा–संस्कृत में दार (पत्नी) पुल्लिंग बहुवचन है। इसके पर्याय स्त्री, नारी, भार्या आदि शब्द स्त्रीलिंग हैं तो कलत्र नपुंसक लिंग है। इस तरह स्पष्ट है कि व्याकरणिक तथा प्राकृतिक लिंग में पर्याप्त भिन्नता है। अंग्रेजी में (Masculine, Feminine, Neuter, Coomon) चार लिंग (Gender) हैं। संस्कृत में पुल्लिंग, स्त्रीलिंग और नपुंसक, तीन लिंग हैं, तो हिंदी में मात्र पुल्लिंग की व्यवस्था है।

हिंदी में लिंग की अभिव्यक्ति मुख्यतः क्रिया से होती है। किसी शब्द के लिंग की ज्ञान–प्राप्ति, उसको वाक्य में प्रयोग कर सम्बन्धित क्रिया के रूप से करते हैं। कभी–कभी लिंग निराकरण कारकों चिह्नों से भी होता है; यथा– 'उनका कुत्ता था', 'मेरी लाठी थी'। इन दो वाक्यों में 'उनका' के 'का' और 'मेरी' के 'री' से कुत्ता और लाठी के क्रमश' पुल्लिंग, स्त्रीलिंग होने का ज्ञान है। हिंदी में लिंग भाव दो प्रकार से व्यक्त करते हैं –

(क) प्रत्यय लगाकर

हिंदी के पुल्लिंग शब्दों में प्रत्यय लगा देने से वे स्त्रीलिंग बन जाते हैं; यथा –

आ = बाल > बाला, बालक > बालिका	ई = नर > नारी, लड़का > लड़की
इन = धोबी > धोबइन, नाई > नाइन	इया = कुत्ता > कुतिया
आनी = नौकरानी	नी = शेर > शेरनी

(ख) स्वतन्त्र शब्द लगाकर

हिंदी में ऐसे प्रयोग सीमित ही मिलते हैं। संस्कृत में 'व हके लिए स्त्रीलिंग सा, तो पुल्लिंग सः का प्रयोग करते हैं। अंग्रेजी में 'वह' के लिए He और स्त्रीलिंग के लिए She का प्रयोग करते हैं

2. वचन (Number) : वचन के द्वारा संख्या की सूचना मिलती है। हिंदी के एक वचन में एक व्यक्ति या वस्तु के अर्थबोधक शब्द होते हैं, तो बहुवचन में दो या दो से अधिक व्यक्ति या वस्तु के अर्थ बोधक शब्द होते हैं। हिंदी में एकवचन और बहुवचन दो वचनों की व्यवस्था है। संस्कृत में एकवचन, द्विवचन, बहुवचन तीन वचन हैं। इनके संज्ञा, सर्वनाम और क्रिया आदि शब्द तथा धातु रूपों में वचनों का निधारण प्रत्यय लगाकर करते हैं; यथा –

पठ् (पढ़ना)– पठति (पढ़ता है), पठतः (दो पढ़ते हैं), पठन्ति (वे पढ़ते हैं)।

हिंदी शब्दों के एकवचन से बहुवचन परिवर्तन में कई प्रत्ययों का सहारा लिया जाता है; यथा–

ए = लड़का > लड़के	घोड़ा > घोड़े	एँ = गाय > गायें
इयाँ = चिड़िया > चिड़ियाँ	स्त्री > स्त्रियाँ	ओं = घोड़ा > घोड़ों, बैल > बैलों

समूहवाचक शब्द प्रायः एकवचन में ही प्रयुक्त होकर भी एकवचन में प्रयुक्त होते हैं; यथा– गाय पालतू जानवर है। कुत्ता स्वामिभक्त जानवर है।

हिंदी में ऐसे कई शब्द हैं, जिनके एक ही रूप का प्रयोग एकवचन और बहुवचन दोनों में ही होता है। ऐसे मुख्य शब्द हैं –छात्र, कवि, मुनि, साधु आदि। वचन–परिवर्तन में संज्ञा, और क्रिया ही नहीं, विशेष शब्द भी प्रभावित होते हैं; यथा अच्छा > अच्छे, गन्दा > गन्दे आदि।

3. पुरुष : भारत में पुरुष की कल्पना दो या दो से अधिक व्यक्तियों के आमने–सामने होने और वार्तालाप करने से हुई है। ऐसे समय वक्ता, श्रोता और अन्य व्यक्ति या वस्तु का अस्तित्व होता है। इसी संदर्भ में अन्य पुरुष, मध्यम पुरुष और उत्तम पुरुष का सैद्धांतिक रूप में निर्धारण किया गया है, अर्थात् वक्ता–उत्तम पुरुष, श्रोता–मध्यम पुरुष

दोनों से भिन्न अन्य पुरूष। संस्कृत में प्रथम ईश्वर को माना गया है। इसलिए प्रथम पुरुष सबसे पहले और उत्तम पुरुष अन्त में रखा गया है।

प्रायः सभी भाषाओं में तीन पुरुषों की व्यवस्था है; यथा –

हिंदी	संस्कृत	अंग्रेजी
अन्य पुरुष वह, वे	सः, तौ, ते, सा, ते, ताः	He, She, They
मध्यम पुरुष तुम, आप, सब	त्वं, युवाम, युयम्	You
उत्तम पुरुष मैं, हम	अहं, आवाम्, वयम्	I, We

4. कारक (Case) : क्रिया के निष्पादक को कारक कहते हैं। क्रिया की निष्पत्ति के साधनों में भेद होने के कारण कारकों में भेद होता है। प्रत्येक भाषा के, कारकों की अपधारणा और उनकी संख्या भिन्न–भिन्न होती है। संस्कृत में कर्त्ता, कर्म, कारक, सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण, सम्बोधन, सात कारक पाए गए हैं। कुछ विद्वान सम्बन्ध को कारक की कोटि में नहीं रखते, क्योंकि क्रिया की निष्पत्ति में इसका सीधा योग नहीं होता है, यथा–दशरथ के पुत्र राम बन गए। यहाँ दशरथ का सम्बन्ध राम से है न कि गए (क्रिया) से। सम्बोधन का रूप प्रथमा पर आधारित होता है। इस प्रकार सम्बोधन की पूर्ण स्वतंत्र सत्ता नहीं है। कुछ आचार्यों तथा विद्वानों ने सम्प्रदान और अपादान को भी कारक श्रेणी में स्वीकार नहीं किया है। उनका कहना है कि इनका भी क्रिया से सीधा योग नहीं होता है। इसी प्रकार कर्त्ता, कर्म, कारण और अधिकरण चार कारक हुए। कारकों में लगने वाले चिह्नों को विभक्ति कहते हैं। विभक्ति नामकरण का आधार है कि इससे कारक एक–दूसरे से विभक्त हो जाते हैं।

5. काल (Tense) : समय की स्थिति को काल कहते हैं। सभी भाषाओं में काल के मुख्यतः तीन भेद हैं– भूत, वर्तमान और भविष्यत् काल। इससे कार्य निष्पत्ति के समय का बोध होता है। भाषा–विकास के अनुसार काल की धारणा में परिवर्तन होता रहता है। सामान्यतः भाषा में बीते हुए काल को 'भूतकाल'; जो काल चल रहा हो, उसे वर्तमान काल; जो काल अभी आया न हो, उसे भविष्यत् काल कहते हैं। विभिन्न कालों के उदाहरण द्रष्टव्य हैं –

भूतकाल	–	वह जा रहा था।	मैं वहाँ गया था।
वर्तमानकाल	–	वह जा रहा है।	मैं वहाँ जा रहा हूँ।
भविष्यत् काल	–	वह जा रहा होगा।	मैं वहाँ जाऊँगा।

कभी–कभी काल–सिद्धान्तों के विपरीत प्रयोग मिल जाते हैं; यथा–माली प्रतिदिन पौधों को सींचता है। इस वाक्य में भूतकाल में माली के पौधों के सींचने, वर्तमान में पौधों को सींचने के साथ भविष्य में भी सींचते रहने का भाव स्पष्ट होता है। उक्त वाक्य को देखने से वर्तमान काल से सम्बन्धित वाक्य लगता है, किन्तु है काल–निरपेक्ष। यदा–कदा भविष्यत् काल के लिए भूतकाल के पदों का निर्माण करते हैं, यथा– आप रूकें, मैं आया। यहाँ 'आया' शब्द आना का भूतकालिक रूप है, किन्तु भविष्यत् काल के रूप में प्रयुक्त है। भविष्यत् काल के वर्तमान काल के रूप भी प्रयुक्त होते हैं; यथा मैं आपके घर शाम को पहुँच रहा हूँ। यहाँ पहुँच रहा हूँ वर्तमान काल का रूप है, किंतु भविष्यत् काल के लिए प्रयुक्त है।

6. वृत्ति : हिंदी में वृत्ति के लिए क्रियार्थ, क्रियाभाव और क्रिया प्रकार आदि शब्दों के प्रयोग होते हैं। अंग्रेजी में इसे Mood कहते हैं। डॉ0 रमानाथ सहाय के अनुसार वृत्ति को इस प्रकार परिभाषित कर सकते हैं, ''मूड'' की अभिवाजना मुख्यतया विशिष्ट लकारों द्वारा अथवा और वृत्तिघोतक सहायक क्रियाओं द्वारा होती है गौणतया विशिष्ट निपातों का भी प्रयोग होता है और पदक्रम और अनुतान विशेष भी सीमित मात्रा से इसे घोषित करता है।''

स्वरूप : इसके द्वारा मनुष्य के मानसिक भाव साथ कर्त्ता और कर्म के सम्बन्ध का ज्ञान होता है। पाणिनि के अनुसार, लिङ् लकार वृत्ति का मुख्य आधार है। इसके द्वारा वक्ता के मानसिक व्यापक और भाषिक तत्वों का ज्ञान होता है। वृत्ति और वक्ता के सम्बन्ध को रेखांकि करते हुए डॉ0 सूरजभान सिंह ने कहा है, ''कार्य–व्यापार के प्रति वक्ता की वृत्ति वस्तुतः एक व्यापक व्याकरणिक लक्षण है जिसे अगर व्याकरणिक वृत्ति की परंपरागत परिभाषा से अधिक विस्तृत आयाम दें तो इसमें वे सभी भाषिक तत्त्व या लक्षण शामिल हो सकते हैं, जो किसी भी प्रकार वाक्य में वक्ता के विशिष्ट दृष्टिकोण या अभिव्यक्ति को प्रकाशित करते हैं''

वर्गीकरण : वृत्ति को मुख्यतः दो वर्गों में विभक्त कर सकते हैं –

(क) वृत्ति प्रत्यय

इसमें मुख्यतः आज्ञार्थक, संभावनार्थक, संकेतार्थक और भविष्यत् संबंधी प्रत्ययों का प्रयोग किया जाता है।

1. आज्ञार्थक को दो उपवर्गों में बाँट सकते हैं –

   प्रत्यय आदेश – मेरे लिए कलम लाओ।

   अप्रत्यक्ष आदेश – मुझे एक कलम चाहिए।

ऐसे में 'ऐगा' प्रत्यय लगा देने से निवेदन भाव आता है– चाय दीजिएगा, साथ चलिएगा आदि।

2. सम्भावनार्थक वृत्ति के साथ क्रिया में 'ए' प्रत्यय लगाते हैं इससे इच्छा, कामना, अनुरोध का भाव प्रकट होता है –

   शायद वह चला जाए। ईश्वर तुम्हें खुश रखे।

3. संभाव्य निश्ति तथा अनिश्चित संभावनाओं में क्रमशः तो होगा, रहा होगा ओर 'ता हो', 'रहा हो' के प्रयोग होते हैं; यथा –

   वह लिखता होगा। वह जग रहा होगा।

   शायद वह पढ़ता हो। शायद वह जाग रहा हो।

4. संकेतार्थक हिंदी में संकेत वृत्ति की सूचना शर्त और इच्छा के सन्दर्भ में 'ता' प्रत्यय से होती है– अगर अंकुर कहता तो यह जरूर आता। (शर्त)

   काश, मैं भी लौट आता। (इच्छा)

5. भविष्यत् : भविष्यत् वृत्ति क्रिया में 'एगा', एगी, एँगे, 'ऊँगा' आदि प्रत्यय लगाने से बनती है –

   वह घर जाएगा।मैं घर जाऊँगा।

(ख) सहायक वृत्तिक क्रियाएँ

हिंदी में मुख्य क्रिया के साथ सहायक क्रिया लगाने से वृत्ति का बोध होता है।

सकना – कार्य व्यापार की पूर्णता का ज्ञान होता है– मैं नदी पार कर सकता हूँ।

पाना – सामर्थ्य का बोध होता है –वह पत्र लिख पाया। तुम गा पाए।

ते बना – सामर्थ्य बोध होता है– यहाँ नकारात्मक रूप होते हैं– उससे कहते न बना।

ना है – बाध्यतासूचक वृत्ति क्रिया है– मुझे अभी लिखना है।

ना चाहिए – इससे परामर्श का बोध होता है– मुझे घर चलना चाहिए। तुम्हें अवश्य लिखना चाहिए।

3.6 हिंदी वाक्य संरचना : मूलाधार

भारतीय आचार्यों में योग्यता का अर्थ है– वाक्य के विभिन्न पदों में पारस्परिक योग्यता अर्थात् अर्थ की दृष्टि से एक पद का दूसरे पद के साथ संबंध भाव में बाधा न होना योग्यता है। इसे दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि वाक्य के विभिन्न पदो ंके अन्वय में कोई बाधा न होना योग्यता है। वाक्य के पदो ंके अन्वय में दो प्रकार की बाधाएँ होती हैं।

(क) अर्थमूलक अयोग्यता : जब कोइ वाक्य व्याकरण की दृष्टि से योग्य हो, किन्तु अर्थ–प्रतीति की दृष्टि से अनुपयुक्त हो, तो वह वाक्य नहीं होगा; यथा– वह आग से पौधों को सीच रहा है। वह पानी खा रहा है। दोनों ही वाक्य व्याकरण की दृष्टि स योग्य हैं; किन्तु अर्थ की दृष्टि से अयोग्य हैं, क्योंकि आग से सिंचने का कार्य नहीं होता है और न ही पानी खाया जाता है। सिंचने का कार्य पानी से होता है और पानी पीया जाता है। इस प्रकार दोनों पद समूह तभी वाक्य की योग्यता प्राप्त कर पाएंगे जब इन रूपों में होंगे– वह पानी से पौधों को सींच रहा है। वह पानी पी रहा है। ऐसे वाक्यों को ही समाज की स्वीकृति प्राप्त होती है।

(ख) व्याकरणमूलक अयोग्यता : ऐसे वाक्य जिन्हें समाज में यत्र–तत्र मान्यता मिल जाने से अर्थ अभिव्यक्ति संभव होती है, किंतु व्याकरणिक दृष्टि से उनकी संरचना अशुद्ध होती है, तो मानक भाषा में उसे वाक्य नहीं माना जाएगा। यह व्याकरणिक अयोग्यता लिंग, वचन, विभक्ति आदि किसी भी रूप में हो सकती है; यथा –

रमेश घर जाती है – लिंग अयोग्यता

तुमने बोले – विभक्ति अयोग्यता

हम जाता हूँ – वचन।

2. आकांक्षा

आकांक्षा का शाब्दिक अर्थ है– इच्छा, अपेक्षा या जिज्ञासा की असमाप्ति। वाक्य में शब्द या पद एक दूसरे से संबंधित होते हैं। यह सम्बन्धन भाव वाक्य के आकांक्षा तत्त्व के ही कारण संभव होता है। वाक्य में प्रयुक्त शब्दों की अर्थ अभिव्यक्ति संदर्भ में एक–दूसरे की अपेक्षा रहती है। मानक हिंदी में प्रायः कर्ता, कर्म और क्रिया का क्रमिक प्रयोग होता है, किन्तु वाक्य में इनको एक दूसरे की अपेक्षा होती है। कर्त्ता कर्म को क्रिया की अपेक्षा होती है, तो कर्म को कर्त्ता और क्रिया की। क्रिया को कर्ता और कर्म की अपेक्षा होती है। इस अपेक्षा की पूर्ति पर ही वाक्य की संरचना और अर्थ की अभिव्यक्ति सम्भव है। इस प्रकार आकांक्षा की अपूर्णता पर वाक्य अपूर्ण होता है; यथा–''रजनी'' कहने से वाक्य पूरा नहीं होता है। इससे मन में जानने की इच्छा होती है कि वह क्या करती है ''गाती है'' कहने से कर्त्ता सम्बन्ध में जिज्ञासा होती है कि कौन गाती है? क्या गाती है? इसी प्रकार 'गीत'' कहने से कर्त्ता और क्रिया के विषय में जिज्ञासा होती है। उक्त तीनों पद– ''रजनी'', ''गीत'' और ''गाती है'' एक साथ साकांक्ष प्रयुक्त होने से– ''रजनी गीत गाती है'', पूर्ण वाक्य की संरचना होती है। वाक्य की आकांक्षा शक्ति के द्वारा श्रोता की जिज्ञासा की पूर्ति होती हैं ''तुम मेरे लिए...'' से पूर्ण भाव प्रकट नहीं होता है। इसमें इच्छा शेष रह जाती है। इसलिए इसे वाक्य नहीं मान सकते हैं। आकांक्षा पूर्ति हेतु ''फूल लाओगे'' पदों या वाक्यांश को जोड़ देने पर वाक्य संरचना पूरी हो जाती है।

वाक्य की आकांक्षा के संदर्भ में कभी–कभी विशेष संरचना सामने आती है। वक्ता या लेखक वाक्य का कुछ अंश श्रोता या पाठक के परिचित संदर्भ में चमत्कारिक रूप देने के लिए छोड़ देता है। श्रोता या पाठक उसे भाव–वेग से पूरा करता हुआ आकांक्षा की पूर्ति करता है; यथा– कई बार मित्र को पत्र लिखने पर जब उत्तर नहीं आता, तो उत्तर पाने के लिए विशेष आकांक्षा आधारित वाक्यों का प्रयोग करता है– ''कई पत्र लिखे, तुमने उत्तर नहीं दिया। अब की बार उत्तर न दिया तो मैं......। सच है, तो मैं......'' यहाँ लेखक और पाठक संबंध–संदर्भ की गंभीरता से वाक्य की पूर्ति होगी।

3. आसक्ति

इसे सन्निधि की भी संज्ञा दी जाती है। इसका शाब्दिक अर्थ है– समीपता। यहाँ वाक्य में आसक्ति का अर्थ है– वाक्य में प्रयुक्त शब्दों या पदों का विशेष अन्तराल के साथ क्रमिक रूप में प्रयोग। वाक्य में विभिन्न पदों की दूरी सिमट जाए या अधिक हो जाय, तो वाक्य का अस्तित्व संदिग्ध हो जाएगा; यथा– ''यतनकलघरचलना'' की सार्थकता तब तक अस्पष्ट है जब ''यतन कल घर चलना'' रूप में नहीं लिखा जाता है। इसी प्रकार यदि इस वाक्य का ''यतन'' सवेरे बोले, ''कल'' दोपहर में बोले ''घर'' शाम को और ''चलना'' रात में बोले तो यह वाक्य नहीं हो सकता है। वाक्य के विभिन्न पदों का एक विशेष अन्तराल के बाद प्रयोग अनिवार्य है। आधुनिक भाषा वैज्ञानिक चिन्तन–प्रक्रिया में वाक्य के कुछ अन्य अनिवार्य तत्व बताए गए हैं– सार्थकता अन्विति और पदक्रम।

1. सार्थकता : भाषा की मूल इकाई वाक्य का उद्देश्य है– पूर्ण और सार्थक अभिव्यक्ति। वाक्य की सार्थकता का अर्थ है– वाक्य में प्रयुक्त सभी शब्दों और पदों का सार्थक रूप में प्रयोग; यथा– ''गाय को गो–माता कहते हैं'' में सार्थकता है। यदि इस वाक्य के शब्दों को इस प्रकार ''यगा को गो तामा तेहक हैं'' प्रयोग करें, तो सार्थकता समाप्त हो जाती है और यह वाक्य नहीं रह जाता है। यहाँ पर ध्यातव्य है कि योग्यता के अन्तर्गत पदों और शब्दों की सार्थकता का भाव निहित होता है। वाक्य के ऐसे रूप को समाज द्वारा योग्यता संदर्भ से भी स्वीकृति नहीं मिल सकती है। अतः सार्थकता को वाक्य का भिन्न रूप में अनिवार्य तत्व कहना तर्कसंगत नहीं है।

2. **अन्विति** : इसके लिए अन्वय शब्द का भी प्रयोग होता है। अन्विति का अर्थ है – व्याकरणिक रूप में एकरूपता। इसके अनुसार वाक्य के विभिन्न पदों में वचन, लिंग, पुरुष आदि संदर्भों में समानता होनी चाहिए। डॉ0 भोलानाथ तिवारी के अनुसार वाक्य में दो या दो से अधिक शब्दों की आपसी व्याकरणिक एकरूपता को अन्वय कहते हैं।

   योग्यता–संदर्भ से व्याकरणमूलक योग्यता पर विचार किया जाता है। वाक्य की व्याकरणिक योग्यता (विभिन्न पदों में वचन, लिंग विभक्ति आदि की समानता) ही अन्विति है। इस प्रकार अन्विति को वाक्य का अलग अनिवार्य तत्व कहना उचित न होगा। अन्वय का विचार कर्ता–क्रिया, कर्म–क्रिया, विशेष, सर्वनाम–संज्ञा संबंधों में कर सकते हैं।

   1. कर्त्ता और कर्म से निपेक्ष क्रियाः जब कर्त्ता और कर्म दोनों के साथ कारक चिह्न हों तो सदा पुल्लिंग एकवचन में होती है; यथा– लड़की ने लड़के को देखा, लड़के ने लड़की को देखा।

   2. सर्वनाम और संज्ञा अन्वय : सर्वनाम सदा उसी संज्ञा के लिंग, वचन का अनुसरण करता है, जिसके स्थान पर प्रयुक्त हो; यथा– वह (नीलम) घर जाती है। वह (विनोद) दिल्ली से आ रहा है।

      आदर सूचक वाक्य में सर्वनाम और क्रिया शब्द बहुवचन हो जाते हैं; यथा– गुरू जी आ रहे हैं। वे

संस्कृत पढ़ाएँगे।

कर्त्ता–क्रिया अन्वय – यदि कर्त्ता के साथ कारक चिह्न न प्रयुक्त हो, तो क्रिया कर्त्ता के अनुसार होगी, यथा – लड़की आम खाती है, लड़का इमली खाता है।

कर्त्ता आदर सूचक हो, तो क्रिया बहुवचन होगी; यथा – महात्मा गाँधी अहिंसा के पुजारी थे, पिताजी आ रहे हैं। कर्त्ता के साथ में, को, से आदि लगाने पर क्रिया का अन्वय नहीं होगा, यथा– महेश ने रोटी खा ली, बालिका को जाना है।

वाक्य में एक ही लिंग, वचन, पुरूष के कारक रहित कर्त्ता और, तथा के युक्त हों, तो क्रिया उसी लिंग में, बहुवचन होगी; यथा – सोहन और सागर जा रहे हैं; लता, मीना और माधुरी जा रही हैं।

3. पद क्रम : पदक्रम के लिए 'क्रम' शब्द का भी प्रयोग होता है। इसका अर्थ है – वाक्य के विभिन्न पदों को भाषा–विशेष के सिद्धान्तानुसार क्रम में रखना।

   संस्कृत भाषा में सामान्यतः पदक्रम का विशेष महत्त्व नहीं होता है; यथा– ''ग्राम निकषा नदी नास्ति'' को भिन्न पदक्रम में इस प्रकार भी लिख सकते हैं।

   निकषा ग्राम नदी अस्ति।

   नदी नास्ति ग्रामं निकषा।

   नास्ति नदी ग्रामं निकषा। आदि–आदि।

संस्कृत भाषा में पदक्रम की ऐसी व्यवस्था का आधार है– सम्बन्ध तत्त्व के साथ सामाजिक रूप में प्रयोग सभी भाषाओं के वाक्यों में पदों का विशेष क्रम होता है। इस पदक्रम की व्यवस्था से पूर्ण और स्पष्ट अर्थ की अभिव्यक्ति होती है।

हिंदी भाषा में सामान्यतः कर्त्ता, कर्म और क्रिया का क्रमशः प्रयोग होता है; यथा–

''अंशुल आम खाता है'' में अंशुल–कर्त्ता, आम–कर्म और खाता है–क्रिया है। अंग्रेजी में हिंदी के विपरीत कर्ता, क्रिया और कर्म का क्रमिक प्रयोग होता है; यथा –He eats mango. कर्त्ता+क्रिया+कर्म।

वाक्य का यह क्रम विशेष संदर्भ (बलाघात) में बदल दिया जाता है। वाक्य के जिस भाग पर बल देना होता है, उसे सर्वप्रथम प्रयोग करते हैं; यथा

विपिन तुम्हारे साथ घर जा रहा है।	–	सामान्य वाक्य
तुम्हारे साथ विपिन घर जा रहा है।	–	तुम्हारे साथ पर बल
जा रहा है, तुम्हारे साथ विपिन घर।	–	जा रहा है पर बल

इस प्रकार के विशेष पद क्रम वाले वाक्यों से विशेष अर्थ की अभिव्यक्ति होती है। पदक्रम संदर्भ में ध्यातव्य तथ्य निम्नलिखित हैं –

1. विशेषण का प्रयोग प्रायः विशेष से पूर्व होता है; यथा–अच्छा लड़का है। सुन्दर चित्र लाओ। यदाक–कदा विपरीत प्रयोग भी मिल सकते हैं; यथा– वह है सुन्दर।
2. क्रिया विशेषण का प्रयोग प्रायः कर्ता और क्रिया के मध्य होता है; यथा– वह धीरे चलता है, तुम तेज दौड़ते हो।

3. सम्बोधन प्रायः वाक्य के प्रारम्भ में आता है; यथा–दोस्त! आ जाओ, भगवान! तुम कहाँ हो? यदा–कदा इसके विपरीत प्रयोग भी मिल सकते हैं; यथा– बैठो मित्र!
4. अधिकरण कारक प्रायः क्रिया के पूर्व वाक्य के मध्य में प्रयुक्त होता है; यथा–कलम मेज पर है। कलम संदूक में है।
5. निवेदनात्मक 'न' का प्रयोग वाक्य के अन्त में होता है; यथा– आप आइएगा न!
6. निषेधात्मक अव्यय प्रायः क्रिया के पूर्व आते हैं; मैं नहीं आऊँगा। तुम वहाँ न जाना।
7. ही, भी, तो, तक, भर आदि जिस पर बल देना हो उसके बाद आते हैं; यथा– मैं ही आऊँगा, तुम भी चलना, आप तो आएंगे, शाम तक आ जाना आदि।
8. ''मात्र'' और ''केवल'' शब्दों का प्रयोग वाक्य में पहले और बाद में भी होता है; यथा–

   मात्र दो रुपये, दो रुपये मात्र।

   केवल चार पैसे, चार पैसे केवल।
9. विस्मयादिबोधक प्रायः वाक्य के प्रारम्भ में आते हैं; यथा–वाह। कितना सुन्दर दृश्य है।
10. प्रश्नवाचक शब्द प्रायः उस शब्द के पूर्व आता है, जिससे वह सम्बद्ध हो; यथा– क्या तुम पढ़ रहे हो? तुम क्या पढ़ रहे हो? तुम पढ़ क्या रहे हो? तुम पढ़ रहे हो क्या?

पदक्रम के विषय में यह भी ध्यातव्य है कि पद्यात्मक रचना की अपेक्षा गद्य में पदक्रम अधिक व्यवस्थित होता है। लिखित भाषा से उच्चारित भाषा में पदक्रम अधिक प्रभावशाली और स्पष्ट होता है। पदक्रम की इस स्पष्टता के कारण ही उच्चारित भाग में अभिव्यक्ति अपेक्षाकृत होती है।

हिंदी के विविध रूप

भावाभिव्यक्ति के संदर्भ में विश्व की सभी भाषाएँ सामान्यतः समान होती हैं, क्योंकि सभी भाषाएँ विचार–विनिमय के मुख्य साधन–रूप में होती है। मन के भावों और अभिव्यक्ति की भिन्नता के कारण भाषा में भिन्नता होती है। भाषा प्रयोग अर्थात् उच्चारण के साथ ग्रहण अर्थात् श्रवण और अर्थ–ग्रहण में भी भिन्नता होना स्वाभाविक है। प्रत्येक मनुष्य की शारीरिक रचना तथा परिस्थितियाँ भिन्न–भिन्न होना स्वाभाविक है। प्रत्येक–मनुष्य की शारीरिक रचना तथा परिस्थितियाँ भिन्न–भिन्न होती हैं जिसके कारण भाषा–प्रयोग तथा ग्रहण में भिन्नता आ जाती है। हिन्दी भारतवर्ष में बहुसंख्यक लोगों द्वारा प्रयुक्त भाषा है। इसका प्रयोग व्यक्ति से राष्ट्रीय स्तर तक होता है। इसका प्रयोग सामाजिक, धार्मिक, प्रशासनिक और राजनीतिक आदि क्षेत्रों में होता है। हिन्दी के प्रयोग की विविधता ही इसकी शक्ति है। हिंदी को प्रयोग के आधार पर मुख्यतः निम्नलिखित रूपों में विभक्त कर सकते हैं –

बोली (Dialect) :

इसके लिए विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न आधारों पर विभाषा, उपभाषा, भाषिका और उपप्रादेशिक नाम भी दिए हैं। बोली के प्रयोग कर्त्ताओं की संख्या उपबोली के प्रयोगकत्ताओं की संख्या कहीं अधिक होती है, क्योंकि कई उपबोलियों का संयुक्त रूप ही बोली होता है। इसे दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि एक बोली के अन्तर्गत कई उपबोलियाँ आती हैं। एक बोली के अन्तर्गत आने वाली विभिन्न क्षेत्रों की उपबोलियों के लोग आपस की भाषा को सरलता से समझ लेते हैं। क्योंकि एक बोली की विभिन्न क्षेत्रों की उपबोलियों की ध्वनि, शब्द, पद, वाक्य तथा

अर्थ–संरचना में पर्याप्त समानता होती है। बोली के विभिन्न क्षेत्रों की भाषाओं के उच्चारण तथा लोकोक्ति–मुहावरों के प्रयोग में भी पर्याप्त समानता होती है।

बोलियों के उद्‌भव और विकास का मुख्य आधार है –एक भाषा–भाषियों का दो या दो से अधिक स्थानों पर दूर–दूर बस जाना। उन विभिन्न स्थानों की भाषा में जब उनकी परिस्थितियों के अनुसार धीरे–धीरे पर्याप्त परिवर्तन हो जाता है, तो बोलियों का विकास होता है। इस प्रकार बोली विकास में एक स्थान के लोगों का दूसरे स्थान के लोगों से शिथिल सम्पर्क या सम्बन्ध–शिथिलन में आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक या सामाजिक कोई भी कारण हो सकता है।

भाषा (Language) :

जिस प्रकार उपबोली से बोली का क्षेत्र विसतृत होता है तथा प्रयोगकर्त्ताओं की संख्या भी अधिक होती है, उसी प्रकार बोली से भाषा का क्षेत्र विस्तृत होता है तथा प्रयोगकर्त्ताओं की संख्या अधिक होती है। सामान्यतः समान विशेषताओं वाली कई बोलियों का समूह भाषा है। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि एक भाषा के अंतर्गत कई बोलियाँ आती हैं; यथा–हिंदी भाषा के अन्तर्गत ब्रज, अवधी, हरियाणवी आदि बोलियाँ आती हैं। भाषा निर्माण की प्रक्रिया सायास होती है। जब किसी बोली को राजनीतिक, साहित्यिक और धार्मिक आदि आंदोलनों का सुदृढ़ आधार मिल जाता है, तो उसके प्रयोग की सीमा बढ़ जाती है, उसका साहित्यिक रूप उभर आता है और तब बोली उच्च पद पाकर भाषा बन जाती है। दिल्ली और मेरठ के आसपास बोली जाने वाली 'खड़ी–बोली' का हिंदी भाषा के रूप में विकास इसी प्रकार हुआ है। भाषा–बोली में भेद :– भाषा और बोली के अंतर को इस प्रकार रेखांकित कर सकते हैं –

(क) भाषा का क्षेत्र बोली–क्षेत्र की अपेक्षा विस्तृत होता है।

(ख) भाषा के प्रयोग करने वालों की संख्या तत्सम्बन्धित किसी भी बोली के प्रयोग करने वालों की संख्या से अधिक होती है।

(ग) भाषा के अंतर्गत एक या एक से अधिक बोलियाँ हो सकी हैं; जबकि एक बोली में एक से अधिक भाषा नहीं हो सकती।

(घ) एक भाषा की दो बोलियों में पर्याप्त समानता होने से उच्चारण समता तथा बोधगम्यता बनी रहती है, जबकि दो भाषाओं में ऐसा होना आवश्यक नहीं है; यथा–बंगला भाषी व्यक्ति सामान्य रूप में तमिल भाषा समझ नहीं सकता, इसी प्रकार तमिल भाषी व्यक्ति के लिए बंगला भाषा समझना दुष्कर होता है।

(ङ) भाषा का रूप साहित्यिक तथा व्याकरण सम्मत होता है, जबकि बोली मात्र बोल–चाल में प्रयुक्त होती है। बोली का व्याकरण सम्मत होना आवश्यक नहीं है।

(च) भाषा के प्रयोग शिक्षा तथा शासन में होता है, जबकि बोली बोबोलचाल तक सीमित रूप में प्रयुक्त होती है।

(छ) भाषा में साहित्यिक रचना होती है, जबकि बोली में लोक–साहित्य, संस्कृति का जैसा सहज तथा निखरा रूप मिलता है, वैसा रूप भाषा में नहीं मिलता।

(ज) भाषा के साथ बौद्धिकता व्यायाम साहित्य को परिनिष्ठित रूप प्रदान करता है। बोली में सहजता तथा स्वाभाविकता से लोक–साहित्य का मनोरंजक रूप उभरता है।

राजभाषा (Official Language) :

जिस भाषा में प्रदेश या देश का राजकाज होता है, उसे राजभाषा कहते हैं। सामान्य देश की राष्ट्रभाषा ही राजभाषा होती है, क्योंकि जनसामान्य के व्यवहार से जुड़ी राष्ट्रभाषा होने पर इसका प्रयोग सरल हो जाता है। 14 सितंबर, 1949 को हिंदी संघ की राजभाषा घोषित की गई। इस प्रकार संवैधानिक रूप में हिंदी को यह स्थान प्राप्त हुआ। इस दृष्टि से हिंदी प्रयोग की अभी पर्याप्त अपेक्षाएँ हैं। हिंदी को राजभाषा का संवैधानिक रूप मिल तो गया है, किंतु कार्य रूप अभी बहुत पीछे है। भारतीय संविधान और राजभाषा अधिनियम के प्रावधान के अनुसार इसके प्रयोग के मुख्य क्षेत्र हैं–शासन, विधान, न्यायपालिका तथा कार्यपालिका।

राष्ट्रभाषा (National Language) :

किसी देश या राष्ट्र के सभी क्षेत्रों में व्यवहार के लिए प्रयुक्त होने वाली भाषा को राष्ट्र–भाषा कहते हैं। कोई भाषा मानक भाषा बनने के पश्चात् ही राष्ट्रभाषा बन सकती है। राष्ट्रभाषा का पद उस ही भाषा को मिल पाता है, जिससे राष्ट्र के सर्वाधिक लोग परिचित हों तथा उसमें कार्य तथा भावाभिव्यक्ति कर सकते हों। देश के विभिन्न क्षेत्रों तथा प्रदेशों के विभिन्न भाषाभाषी लोग इस भाषा का प्रयोग व्यावहारिक रूप में सार्वजनिक कार्यों में करते हैं। हिंदी भारतवर्ष की राष्ट्रभाषा है। अहिन्दी भाषी (बंगाली, मराठी, गुजराती आदि) व्यक्ति भी अपनी–अपनी भाषाओं के साथ सार्वजनिक रूप में हिंदी का प्रयोग करते हैं। इस प्रकार राष्ट्रभाषा का संबंध पूरे राष्ट्र से होता है और देश की उन्नति राष्ट्रभाषा की उन्नति पर बहुत कुछ निर्भर होती है। देश का अधिकांश साहित्य राष्ट्र–भाषा में रचा जाता है। राष्ट्रभाषा राष्ट्र को एकसूत्र में बाँधने का सबल माध्यम है। पूरे देश को एकसूत्र में बांधने वाली विशेषता के कारण इसे सम्पर्क भाषा भी कह सकते हैं। देश के विभिन्न क्षेत्रों में हिंदी के क्षेत्रीय रूप मिलते हैं; यथा– बम्बईया हिंदी आदि।

संपर्क भाषा :

भारतवर्ष के अधिकांश व्यक्ति हिंदी समझते और इसका प्रयोग करते हैं। हिन्दी भाषी क्षेत्रों में तो हिंदी का प्रयोग होता है, किन्तु अहिंदी भाषी क्षेत्रों में भी हिन्दी का प्रभावशाली प्रयोग भावाभिव्यक्ति में सहयोगी होता है। जब बंगाल में पंजाबी भाषी प्रदेश का व्यक्ति पहुंचता है बंगाल भाषी को पंजाबी नहीं समझ आती और पंजाबी भाषी को बंगला आती है, तो दोनों हिंदी को संपर्क भाषा के रूप में अपना कर संवाद कर लेते हैं। इसी प्रकार दो विभिन्न भाषाओं के अन्तराल में हिन्दी बात–चीत हेतु सेतु बनती है। हिन्दी का संपर्क भाषा रूप देश की एकता का परम आधार है। देशवासियों को हिन्दी को संपर्क भाषा के रूप में अपनाना चाहिए।

इस प्रकार हिंदी का प्रयोग विविधता के साथ सामने आता है जो देश की एकता का सबल आधार है।

4.3 हिंदी की संवैधानिक स्थिति

'राजभाषा' का शाब्दिक अर्थ है– राजा की भाषा अर्थात् शासक की भाषा। इस शब्द से राजा और भाषा के महत्व का ज्ञान होता है, किंतु जनतांत्रिक शासन में 'राजा' शब्द का महत्व नहीं है। इस प्रकार राजभाषा का अर्थ है– राजकीय भाषा या राजकाज की भाषा। इसी आधार पर भारत सरकार ने 'राजभाषा आयोग' (Official Language Commission) निर्माण किया है। 14 सितंबर, 1949 को हिंदी भारत संघ की राजभाषा बनी। राजभाषा के प्रयोग के चार मुख्य क्षेत्र हैं– शासन, विधान, न्यायपालिका और कार्यपालिका। स्वतंत्रता पूर्व इन चारों क्षत्रों में अंग्रेजी का वर्चस्व था। इन्हीं चारों क्षेत्रों में हिंदी को प्रतिष्ठित करना ही राजभाषा हिन्दी को महत्व देना है।

भारतवर्ष के संविधान की धारा 343 से 351 के विभिन्न अनुच्छेदों में राजभाषा का प्रावधान किया है। इनमें मुख्यतः चार अध्यायों में चर्चा की गई है संघ की भाषा, प्रादेशिक भाषा; उच्चत्तम न्यायालय और उच्च न्यायालय और

उच्च न्यायालय की भाषा; राजभाषा संबंधी विदेश नियम। धारा 343 में हिंदी को भारत संघ की राजभाषा और देवनागरी को उसकी लिपि के रूप में मान्यता दी गई है। हिंदी को राजभाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने में राष्ट्रीय आन्दोलनों में रही हिंदी–भूमिका का विशेष महत्व रहा है। देश के महापुरूषों, हिंदी–प्रेमियों, नेताओं के साथ सामाजिक और साहित्यिक और साहित्यिक संस्थाओं की भूमिका विशेष रूप से उल्लेखनीय रही है।